ISSN-2348-4861

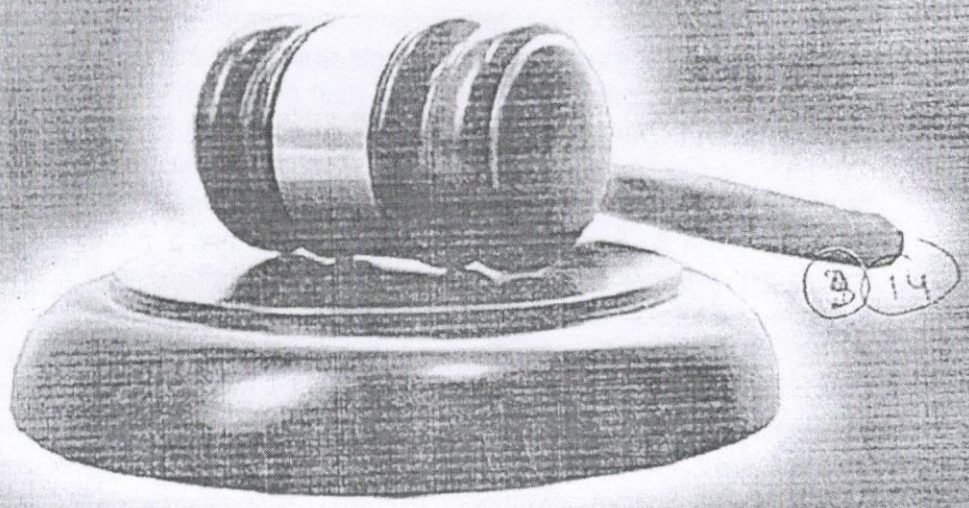

Law and Society :

A New Challenge

International Journal of Law & Social Science

Vol .VI Year - 3 July-December 2016

भारत में राष्ट्रीय एकता बनाम क्षेत्रीयता

डॉ. दीपक कुमार मोदी
अतिथि विद्वान
राजनीति विज्ञान एवं लोकप्रशासन विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर (म.प्र.)

भारत की स्वतन्त्रता के 70 वें वर्ष में यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि राष्ट्रीय अस्मिता से बढ़कर क्षेत्रीय अस्मिता क्यों बनी हुई है? कश्मीर, पंजाब असम समस्याएँ ? तेलगांना की उपक्षेत्रीयता? बोडोलैण्ड, गोरखालैण्ड एवं पूर्वात्तर राज्यों में पृथकतावादी आंदोलन ? बुन्देलखंड, विदर्भ, रूहेलखंड, महाकौशल, मालवा आदि क्षेत्रीय आंदोलनों ने वर्तमान भारतीय राजनीति को यह सोचने के लिए मजबूर कर दिया है कि ये आंदोलन क्या केवल राजनीतिक व आर्थिक कारणों से होते है? इन आंदोलनों से उत्पन्न क्षेत्रीय अस्मिता का संघर्ष राष्ट्रीय एकता के लिए कहाँ तक बाधक है?

भारत में विभिन्न क्षेत्रों की अपनी अलग विशिष्ट भाषा, सामाजिक ढाँचा, जाति व्यवस्था, सांस्कृतिक परम्परायें और आर्थिक वितरण का एक पृथक प्रतिमान है। भारत की विभिन्नता की चर्चा करना चाहें कितनी ही सामान्य धारणा क्यों न हो इसी के साथ उन तरीकों पर भी विचार करना आवश्यक है जिनसे विभिन्नता ने अन्य घटकों के साथ मिलकर भारतीयों के विचारों, दृष्टिकोण व भावनाओं को प्रभावित किया है और जिसका क्षेत्रीय स्वरूप में प्रकटीकरण हुआ है। इससे क्षेत्रीय आंदोलनों का उद्भव हुआ है।

राष्ट्रीय एकता एक बहु– आयामी अवधारणा है जिसके राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक इत्यादि अनेक पक्ष हो सकते है। फिर भी अपने मूल रूप में ऐसी सामुदायिक या राष्ट्रीयता की भावना है जो विविध समुदायों को एकता के सूत्र में पिरोती है ताकि संस्कृतियों, जातियों भाषाओं व धर्मो के अंतर को भावनात्मक दृष्टि से संपूर्ण इकाई के रूप ग्रहण किया जा सके और इकाई के समस्त निवासी चाहे वे किसी भी धर्म जाति या भाषा से संबंधित हो अपने देश से प्रेम करे और उनकी उन्नति चाहें। इसकी प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग परस्पर सहिस्णुता और सहानुभूति के साथ एक–दूसरे के सहयोग कर राष्ट्रीय व सामान्य ध्यये की प्राप्ति में सहायक बनें।

भारत में राष्ट्रीय एकता का प्रश्न और भी जटिल है क्योंकि धर्म, भाषा और सांस्कृतिक विभिन्नता के साथ जातियों की विभिन्नता भी भारतीय समाज की पारंपरिक विशिष्टता रही है। राष्ट्रीय एकता की भावना लोकतांत्रिक मार्ग से ही विकसित की जानी चाहिए। भारतीय नेतृत्व ने भारतीय समाज की विविधता में एकता, सामाजिक न्याय और आर्थिक विकास को अपने प्रयत्न लोकतांत्रिक परिप्रेक्ष्य के अर्न्तगत ही बढ़ाए है। लेकिन भारत की भौगोलिक स्थिति, ऐतिहासिक परम्पराओं जातीय, धार्मिक और भाषाई सम्बन्धों तथा आर्थिक माँगो ने क्षेत्रवाद को जन्म दिया है।

21 वीं शताब्दी में प्रवेश कर चुकी भारतीय राज व्यवस्था के समक्ष वर्तमान राजनीति में क्षेत्रीयतावाद ने एक बार फिर नीति–निर्माताओं के समक्ष यह प्रश्न खड़ा कर दिया है कि भारत के मानचित्र की 1947 के बाद जो रेखायें राज्यों के निर्माण के लिए खींची गई, उनके लिए अपनाये गए आधारों में कहीं कभी तो नहीं रह गई या फिर से राज्यों के पुर्नगठन की आवश्यकता है क्योंकि क्षेत्रीयतावाद ने अपने आपको केवल एक प्रदेश तक ही सीमित नहीं रखा है अपितु इसका प्रभाव देश के अन्य प्रदेशों तक भी पहुँचा जिसके परिणामस्वरूप एक राज्य दूसरे राज्य के बीच भाषा, विकास, नदी–जल एवं सीमा संबंधी विवादों को भी जन्म दिया है। इन प्रवृतियों ने देश की एकता की भावनाओं को समाहित किया है।

भारत एक विशाल देश है जिसमें विभिन्न प्रजातियों के लोग निवास करते है, जो अलग–अलग भाषांए बोलते है, जो अलग–अलग धर्मो का अनुसरण करते है यही नहीं ये विभिन्न जातियों, उपजातियों पंथों और उपपंथों में विभाजित है। भारत के कतिपय जातीय धार्मिक और भाषाई समूह कुछ क्षेत्र विशेष में संकेन्द्रित है और वे उन क्षेत्रों को अपना मानते है। एक ओर तो ये समूह अपने क्षेत्र विशेष के आर्थिक विकास में अधिक रूचि रखते है और दूसरी ओर ये अपनी सांस्कृतिक पहचान को भी कायम रखना चाहते है। अतएव वे क्षेत्र से बाहर के निवासियों को क्षेत्र में नहीं रहने देना चाहते है। इसी तरह की मानसिकता के चलते भारत में क्षेत्रवाद की राजनीति का अविर्भाव हुआ है।

भारत जैसे विभिन्नीकृत और विकासशील समाज में समरूप राजनीतिक संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले राष्ट्रीय राज्य का उदय एक स्वचलित और प्राकृतिक विकास नहीं हो सकता। क्षेत्रवाद एक सामाजिक